SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

दलित मुक्ति आन्दोलनः एक अध्ययन

शिप्रा, पी.–एचडी., इतिहास विभाग
सम्प्रति उत्क्रमित मध्य विद्यालय, इब्राहिमपुर, मसौढ़ी, पटना, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
शिप्रा, पी.–एचडी.
E-mail : shiprasingh70017@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 28/06/2025
Revised on : 29/08/2025
Accepted on : 08/09/2025
Overall Similarity : 00% on 30/08/2025

शोध सार

दलित मुक्ति आंदोलन, प्रकृति एंव स्वरूप से सामाजिक आंदोलन है। सामाजिक आंदोलन की व्याख्या सामाजिक संरचना के परिप्रेक्ष्य में होती है। इस दृष्टि से सामाजिक आंदोलन एक विद्या है जिसमें संरचना का एक भाग जो लम्बे समय से शक्ति एवं सुविधा से वंचित है। कालान्तर में सामाजिक प्रभेदना से मुक्ति पाने के लिए अपने को प्रभुता सम्पन्न वर्ग के विरूद्ध सामाजिक संघर्ष के लिए संगठित किया है। दलित समस्या जाति व्यवस्था की देन है इसलिए इसका लक्ष्य जाति विहीन समाज की स्थापना है। सैद्धांतिक रूप से जाति व्यवस्था का विरोध तो कमोबेश सभी युगों में विचारकों व दार्शनिकों द्वारा किया गया है किन्तु व्यवहारिक रूप में वह सदैव बनी रही। आधुनिक युग में संवैधानिक व्यवस्थाओं को लागु हो जाने के कारण जाति व्यवस्था के सामाजिक व धार्मिक आयाम शिथिल अवश्य पड़ गये हैं फिर भी समाज पर उसकी पकड़ कमजोर नहीं हुई है।

मुख्य शब्द

दलित, सामाजिक प्रभेदना, डंगारी संवैधानिक व्यवस्था, परम्परात्मक, आर्थिक.

भूमिका

मध्यकालीन समाज व्यवस्था परम्परात्मक सामंती व्यवस्था थी। इस समय जाति का ताना–बाना, पवित्र–अपवित्र की धारणा के आधार पर बुना गया था। दलित लोग आर्थिक व सांस्कृतिक दृष्टि से निम्न कोटि का काम करते थे। मरे हुए मवेशियों को फेंकना, खाल निकालना, मैला फेंकना, सुअर पालना, गंदे कपड़े धुलना आदि कार्य अलाभकर तथा गंदे व अपवित्र समझे जाते थे। आमतौर पर दलित इन्हीं कार्यों को करते थे इसलिए सामाजिक आर्थिक ढांचे में उन्हें सबसे निम्न स्थान प्राप्त था। उन्हें अछूत समझा जाता था और मुख्य बस्ती से दूर

बसाया जाता था। जो दलित के रूप में जन्मा वह आजीवन दलित रहता था। दलित के रूप में वह आजीवन अपने भू–स्वामी के यहाँ प्रसूति, डंगारी और मजदूरी करता था। जाति व्यवस्था को चिरस्थाई बनाने वाले राजनैतिक एवं आर्थिक आधार ब्रिटिश शासनकाल में धीरे–धीरे कमजोर पड़ने लगे। औद्योगिक विकास व पूँजीवाद के प्रसार के फलस्वरूप जाति व्यवस्था का आर्थिक व व्यवसायिक आधार भी समाप्त हो गया। जाति व्यवस्था को अक्षुण्ण रखने वाला पुरोहित व सामंत वर्ग का परम्परात्मक वर्चस्व औपनिवेशिक काल के उत्तरार्ध में समाप्त होने लगा जिससे सामाजिक समानता के लिए की जाने वाली पहल आसान हो गई। ब्रिटिश हितों की रक्षा के लिए भारतीयों को अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों में जाना पड़ा जिससे विश्व के अन्य लोगों के साथ भारतीयों का सम्पर्क बढ़ा। उनमें नवचेतना जागृत हुई जिससे परम्परात्मक जात–पाँत के भेदभाव के विरूद्ध सामाजिक वातावरण का निर्माण हो सका और राष्ट्रव्यापी सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आंदोलनों की भूमिका बन सकी।

हिन्दू राजाओं की आपसी लड़ाई, फूट और पतन तथा मुस्लिम सल्तनत की स्थापना के साथ हिन्दू धर्म व समाज, आंतरिक सुधार एवं विकास का मार्ग ढूँढ़ने की अपेक्षा आत्म रक्षा में लीन हो गया, परिणामस्वरूप धार्मिक क्षेत्र में कट्टरता कर्मकांड और पाखण्ड का जोर तो बड़ा ही समाज में अनेक कुरीतियाँ और बुराईयाँ घर कर गई। इस अंधकार से जनमानस को उबारने के लिए समाज में भक्ति आंदोलन के बीच ऊँच–नीच के भेदभाव को स्वीकार नहीं किया और धर्म के क्षेत्र में जाति जनित सीमाओं से परे व्यक्ति की महत्ता को पुनर्स्थापित किया।[1]

अस्पृश्यता व अन्य सामाजिक बुराईयों के विरूद्ध व्यापक जागृति 19वी. सदी के उत्तरार्ध में पाश्चात्य शिक्षा व संस्कृति के प्रभावस्वरूप संभव हुई। पाश्चात्य समाजों में वैज्ञानिक औद्योगिक प्रगति, प्रजातांत्रिक विकास और लौकिक दृष्टिकोण के प्रसार का भारतीय जनमानस पर गहरा प्रभाव पड़ा। कम्पनी शासन की समाप्ति और ब्रिटिश साम्राज्य के प्रत्यक्ष नियंत्रण में जाने के पश्चात् देश में उदारवादी लौकिक शिक्षा का तेजी से प्रसार हुआ। उद्योगों की स्थापना हुई और संचार व आवागमन के साधनों का तेजी से विकास हुआ। भारत में उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया ने पाश्चात्यीकरण को जन्म दिया । पाश्चात्य सामाजिक मूल्य जन्मगत ऊँच–नीच के सामाजिक भेद के स्थान पर स्वतंत्रता व समानता पर आधारित प्रजातांत्रिक संस्थाओं के पक्ष पोषक थे। भारत में राष्ट्रीय जागृति का विकास धार्मिक व सामाजिक सुधारों के रूप में हुआ। धार्मिक सुधार आंदोलन ने एक ओर पाखण्ड, आडम्बर और कर्मकाण्ड का विरोध किया और दूसरी ओर जात–पात व अन्य मध्ययुगीन सामाजिक कुमान्यताओं, जो राष्ट्रीय प्रगति व एकता के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा थी, के विरूद्ध संघर्ष का एलान किया।[2]

राजाराम मोहन राय (1772–1833) भारतीय इतिहास की वह कड़ी है जो इसके अतीत को वर्तमान से जोड़ती है। उन्होंने बह्म समाज की स्थापना की और जात–पात व अन्य सामाजिक बुराइओं को दूर करने के लिए संघर्ष का आहवान किया। एम० जी० रानाडे के नेतृत्व में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। उसने ब्रह्म समाज की सामाजिक समानता की धारणा और जाति विरोधी आंदोलन को सशक्त व व्यापक बनाने में मदद की। प्रार्थना समाज ने दलितों के उत्थान के लिए उपयोगी कार्य किया। इस हेतु इसने एक पृथक मिशन (1898) की स्थापना की। दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज (1875) ने छूआछूत का विरोध किया और शुद्धि के माध्यम से अस्पृश्यों के लिए जो पूर्व में मुसलमान व ईसाई बन गए थे हिन्दू धर्म में लौटने का द्वार खोला। इसने दलितों को जनेऊ पहनने, मन्त्रोचारण करने तथा वेद पढ़ने की स्वतंत्रता प्रदान कर समाजिक हीनता से मुक्ति दिलाने में उल्लेखनीय कार्य किया। ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज शिक्षित व्यक्तियों में अधिक लोकप्रिय रहे जबकि आर्य समाज का प्रभाव विशेष रूप से पंजाब एवं पश्चिमी उत्तरप्रदेश की मध्यम–जातियों तथा हिन्दू धर्म में पुनर्दीक्षित व्यक्तियों पर अधिक रहा।[3]

स्वामी विवेकानन्द आधुनिक राष्ट्रीय आंदोलन के आध्यात्मिक जनक कहे जाते हैं उन्होंने अस्पृश्यता को समाजिक अभिशाप निरूपित किया और कहा कि अस्पृश्यता कोई सामाजिक, नैतिक धार्मिक औचित्य नहीं है। उनकी दृष्टि में अस्पृश्य समस्या का सामाधान हिन्दू धर्म व समाज व्यवस्था में शांतिपूर्ण सुधार के माध्यम से ही अधिक प्रभावकारी हो सकता है।

जातिगत भेदभाव व छूआछूत के विरूद्ध विभिन्न आन्दोलनों का एक उल्लेखनीय पक्ष है ब्राह्मण वर्चस्व का विरोध। महाराष्ट्र में ज्योतिवा फूले ने ''सत्य शोधक समाज'' (1873) की स्थापना की जो जातीय भेदभाव एवं ब्राह्मण

प्रभुता को खुली चुनौती थी। अनेक विरोधों के बावजूद उन्होंने पूना में अछूतों के लिए सर्वप्रथम विद्यालय (1843) की स्थापाना की। मैसूर में वोक्कलिंग संगठित हुए जिनकी देखा–देखी अछूत भी अपनी मुक्ति के लिए एकजुट होने लगे।[4] मद्रास में बी. पंतलू और आर वेंकटरमन ने जातिवाद के विरूद्ध आवाज उठाई तथा दलितों की सोचनीय अवस्था की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। बीसवीं सदी के आरंभ में श्री नारायण गुरू स्वामी ने दलितों की मुक्ति हेतु ''एक जाति एक धर्म एक ईश्वर के सिद्धांत'' पर आधारित हिन्दू धर्म के सामान्तर एक नये धर्म, जो साधारणत प्रतिशत उनके नाम से जाना जाता है, की स्थापना की जिसके प्रभाव स्वरूप केरल की एक भूतपूर्व अस्पृश्य जाति ''इझावा'' में ''श्री नारायण धर्म परिपालना आंदोलन'' का तेजी से प्रसार हुआ। अब्राह्मण आंदोलन का चरम रूप तमिलनाडु में ''द्रविण आंदोलन'' है। रामस्वामी नायकर ने ''सेल्फ रेसपेक्ट मूवमेन्ट'' चलाया और अपने अनुयायियों से ब्राह्मण पुरोहित के स्थान पर अपने पुरोहित रखने को कहा।

19वीं सदी के उत्तरार्ध में भारत में राष्ट्रीय आंदोलन का प्रसार हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन अपने सिद्धांत व प्रकृति में प्रजातांत्रिक था। उसने जाति पर आधारित असमानता व ऊँच–नीच के भेदभाव के विरूद्ध स्वतंत्रता व समाजिक समानता का समर्थन किया। वास्तव में राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान विभिन्न जातियों के लोगों ने देश की स्वतंत्रता के लिए एक–दूसरे के साथ कंधे से कन्धा मिलाकर कर संघर्ष किया, जिससे जातिगत भेदभाव की धारणा कमजोर हुई। बीसवीं सदी के दूसरे दशक तक राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व गाँधी के हाथ में आ गया। अस्पृश्यता उन्मूलन और दलित उत्थान को गाँधी ने राष्ट्रीय आंदोलन का अभिन्न अंग बना दिया। उनका कहना था कि यदि अस्पृश्यता रहती है तो हिन्दू धर्म मिट जाएगा। हिन्दू धर्म को यदि जीवित रखना है तो अस्पृश्यता को मिटाना होगा। अस्पृश्यता रहे इससे अच्छा है कि हिन्दू धर्म मिट जाए। गाँधी अस्पृश्य समस्या को समस्त हिन्दू समाज की समस्या मानते थे और उसका निदान हिन्दू समाज के दायरे के अंतर्गत ही करना चाहते थे। साप्ताहिक पत्र 'हरिजन' के माध्यम से उन्होंने अस्पृश्यता व दलितों के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार के विरूद्ध जनमत जागृत करने का प्रयास किया। ठक्कर बापा के नेतृत्व में कार्य कर रही अस्पृश्यता विरोधी लीग संस्था का नाम गाँधी ने आगे चलकर ''सर्वेन्ट्स ऑफ अनटचेबुल्स सोसायटी'' रख दिया जो अन्ततः हरिजन सेवक संघ के रूप में विख्यात हुई। संघ का लक्ष्य सत्य व अहिंसा पर आधारित क्रान्ति के माध्यम से दलितों को शेष हिन्दुओं के साथ पूर्ण समानता प्रदान करना था। संघ ने प्रधान रूप से तीन क्षेत्रों में कार्य किया–शिक्षा के क्षेत्र में दलितों के लिए पाठशालाएं खोलना, छात्रवृत्ति प्रदान करना, छात्रावास बनाना आदि, आर्थिक क्षेत्र में औद्योगिक सहकारी समितियों की स्थापना करना, औद्योगिक विद्यालय खोलना आदि, कल्याण कार्यों के अंतर्गत दलितों के लिए कुओं, नलकूपों का निर्माण, सार्वजनिक कुओं, घाटों, धर्मशालाओं व मंदिरों को दलितों को सुलभ कराना इत्यादि।

सामाजिक सुधार तथा राष्ट्रीय आंदोलन के देशव्यापी प्रसार के परिणामस्वरुप दलित समाज में भी नव जागरण की लहर पैदा हुई और सदैव दूसरों का मुँह देखने की जगह दलितों ने अपनी मुक्ति के लिए स्वयं पहल करनी शुरू की। पंजाब में आदि धर्म आंदोलन (1926) का सूत्रपात हुआ। महाराष्ट्र में डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में दलितों ने अपनी सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक स्थिति में सुधार के लिए लगभग इसी समय (1924) संघर्ष आरंभ किया। देश के अन्य भागों में दलितों ने अपनी मुक्ति के लिए आंदोलन चलाए जिनमे बंगाल में ''नाम शूद्र आंदोलन'', तमिलनाडु में ''आदि द्रविण आंदोलन,'' आन्ध्र में ''आदि आन्ध्र आंदोलन'' तथा केरल में चेरुमन, पुलय और इझावा आदि दलित जातियों द्वारा चलाये गये आंदोलन विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं।

सामाजिक समानता और स्वतंत्रता को जो संघर्ष बुद्ध ने पच्चीस सौ वर्ष पूर्व छोड़ा था। कालान्तर में भले दब गया हो किन्तु मरा नहीं था। आधुनिक युग में डॉ. अम्बेडकर ने उसे पुनर्जीवित कर दिया।[5] एक साधारण महार जाति (अस्पृश्य जाति) में जन्म लेने के बावजूद अम्बेडकर ने अपने कठिन परिश्रम के द्वारा पाश्चात्य देशों में रहकर ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त की और महाराज बड़ौदा की छात्रवृति को सार्थक किया। उन्हें समाज, अर्थनीति, राजनीति व कानून का बहुत अच्छा ज्ञान था। एक दलित के रुप में अम्बेडकर को दलितों की सामाजिक, धार्मिक और अर्थिक कठिनाईयों का प्रत्यक्ष व कटु अनुभव था। दलितों की मुक्ति उनके जीवन का लक्ष्य थी। उनका कहना था कि हिन्दू दलितों के उतने ही विरोधी हैं जितने कि भारतीयों के यूरोपियन। दलितों मामले में यूरोपियन तटस्थ हैं। हिन्दू अछूतों

के कट्टर विद्वेषी हैं। उनकी मान्यता थी कि जितनी जरूरत देश को आजादी की हैं उससे कहीं अधिक जरूरत दलितों को सामाजिक मुक्ति की है इसलिए वे कहते थे कि राष्ट्र की आजादी के लिए संघर्ष के बजाय दलितों की मुक्ति के लिए लड़ना ज्यादा पसन्द करूँगा। 20 मार्च 1927 को चोदार ताल से पानी लेने के लिए अम्बेडकर ने महार सत्याग्रह का नेतृत्व किया। 24 सितम्बर 1927 को उन्होंने ब्राह्मण विशेषाधिकार व जांत–पाँत के विरोध स्वरुप मनुस्मृति जलाई। दलितों के हितों को प्रकाश में लाने के उद्धेश्य से अम्बेडकर ने ''मूक नायक'' (1920) तथा ''बहिष्कृ त भारत'' (1927) पाक्षिकों के प्रकाशन में सक्रिय योगदान दिया।

दलितों व पिछड़े वर्ग के लोगों के सामाजिक व शैक्षिक विकास संबंधी कार्यों को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से 1924 को बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना की गई। अम्बेडकर इस सभा की प्रबन्ध समिति के प्रधान बनाये गये। सभी दलितों को एक मंच पर एकत्रित करने और उन्हें राजनैतिक अधिकार दिलाने के लिए अम्बेडकर ने ''आल इंडिया शिडयूल्ड कास्ट फेडरेशन'' की और हित व सम्मान की रक्षा के लिए ''समता सैनिक दल'' (1927) का गठन किया। आगे चलकर अम्बेडकर ने 'वहिष्कृत हितकारिणी सभा' को बन्द कर दिया और उसकी जगह ''डिप्रेस्ड क्लास एजुकेशन सोसायटी'' (1928) की स्थापना की। दलितों में शिक्षा के प्रसार के उद्देश्य से ''पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी'' और दलितों एवं श्रमिकों को राजनैतिक शक्ति के रूप में संगठित करने के उद्देश्य से ''इण्डिपेण्डेन्ट लेबर पार्टी'' (1936) का गठन किया। स्वतंत्र भारत में दलितों की सामाजिक निर्योग्यताओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें संविधान के अंतर्गत विशेष संरक्षण व सुविधाएं प्रदान किये जाने का प्रावधान किया गया। संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली को मजबूत संवैधानिक अधिकार, प्रदान करके संविधान ने दलितों को सामाजिक आर्थिक दृष्टि से कमजोर होने के बावजूद भी राजनैतिक आधार पर अपने हितों को सुरक्षित रखने में पूर्णतः सक्षम बना दिया।[6]

निष्कर्ष

सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि दलित आंदोलन की प्रकृति उभयमुखी है– (अ)–सांस्कृतिक और (ब) लौकिक। वास्तव में विज्ञान एवं उद्योग की प्रगति के साथ–साथ धर्म की पकड़ समाज पर कमजोर होती गई। राष्ट्रवादी आंदोलन प्रकृति में सुधारवादी तथा लौकिक था। गाँधी के अछूतोद्धार आंदोलन की लोकप्रियता का उल्लेखनीय पक्ष यह है कि उसका स्वरूप जन आधारित रहा है। बिना जनवादी क्रांति के सामंती पूंजीवादी गठबंधन नहीं टूटेंगे इसलिए जात–पात और दलित समस्याएँ भी समाज में बनी रहेगी। वास्तव में दलित आंदोलन के स्वरूप एवं भविष्य का प्रश्न सम्पूर्ण समाज रचना और उसमें होने वाले भावी परिवर्तन के साथ जुड़ा हुआ है। यदि समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र पर आधारित वर्तमान संरचनात्मक प्रारूप जनता की आवश्यकताओं व अपेक्षाओं की पूर्ति में विफल होता है तो इससे दलित समस्या का स्थायी समाधान कतई संभव नहीं है। दलित समाज को मुख्यधारा में लाने के लिए सामाजिक, आर्थिक उत्थान के साथ शैक्षणिक रूप से उत्थान कर ही दलितों की मुक्ति की बात कर सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. श्री निवास, एम. एन. (1982) *इंडियाः सोशल स्ट्रक्चर,* हिन्दुस्तान पब्लिशिंग कारपोरेशन, दिल्ली।
2. देसाई, ए. आर. (1982) *सोशल बैक ग्राउण्ड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म,* पापुलर प्रकाशन, बाम्बे।
3. जैन, प्रतिभा (1980) *डिप्रेस्ड क्लास मूवमेन्टः ए गांधीएन एप्रोच,* रावत प्रकाशन, गाँधी मार्ग, नई दिल्ली, 465–77।
4. भट, चंद्रशेखर (1979) *द रिफार्म मूवमेंट एमांग द वाडार्स ऑफ कर्नाटक,* द जर्नल द इस्टर्न *एन्थ्रोपालजीस्ट,* 7(3), 165–84।
5. सिंह, आर. जी. (1981) निओबुद्धिस्ट मूवमेन्ट एमांग द हरिजन्स आफ अहमदपुर प्रतिशत, अ सर्च फार न्यू स्टेटस एंड आइडेन्टिटी, *जर्नल ऑफ इंडियन एन्थ्रोपोलोजिकल सोसायटी,* 16(3), 203–208।
6. अम्बेडकर, बी. आर. (1980) *बाबा साहेब के पन्द्रह व्याख्यान–चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु* (संकलित एवं अनुदित), बहुजन कल्यान प्रकाशन, लखनऊ।

****